[श्री नाथ पाई]

रक्षा करने का उत्तरदायित्व लेना चाहिए। हमें आंग्ल भारतीय लोगों को भी नागरिक अधिकार देना चाहिए। आंग्ल भारतीय सारे देश में फैले हुये हैं और उनकी भाषा ही उनके सम्पर्क का मुख्य साधन है। और केवल इस दृष्टि से मैं अंग्रेजी भाषा की रक्षा चाहता हूँ कि यह भारत के एक बहुत ही छोटे से साम्प्रदाय की भाषा है।

यदि ऐसा न हुआ तो इस साम्प्रदाय का अस्तित्व शनैः-शनैः समाप्त हो जायेगा। मेरे विचार में ऐसा तो कोई भी नहीं चाहेगा। अतः हमें इस मामले पर इसी दृष्टिकोण से सोचना चाहिए।

हिन्दी का जहां तक प्रश्न है, यह हमारी राष्ट्र भाषा है और हमें उस पर गौरव है। हमारी वफादारी और सहानुभूति हिन्दी के लिए सर्वदा सजीव है। सरकार भी इसके लिए हमेशा प्रयत्नशील रहेगी, परन्तु हमें अपने आंग्ल भारतीय बन्धुओं का दृष्टिकोण भी अपने समक्ष रखना चाहिए। प्रत्येक साम्प्रदायों को भारत भूमि पर जन्म लेने का गौरव प्राप्त होना ही चाहिए। मैं इस पर जोर दूंगा कि इसी दृष्टिकोण से इस मामले पर विचार किया जाना चाहिए। साथ ही यदि सिन्धी, सन्थाली, मनीपुरी और राजस्थानी के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार हो सके, तो और भी अच्छा है।

†**प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू)** : यह वाद-विवाद काफी देर से चल रहा है। मैं इसमें खुद हिस्सा नहीं लेना चाहता था। इसलिये नहीं कि मैं इस मसले से कोई दिलचस्पी नहीं रखता, बल्कि इसलिये कि इस वाद-विवाद की शुरूआत से ही मैं यह महसूस कर रहा था कि इस खास बहस में हर सदस्य को उसकी अपनी राय जाहिर करने और पूरी आजादी के साथ वोट देने की गुंजाइश रहनी चाहिये। इस मामले में सदस्यों पर पार्टी का या पार्टी के हित (सचेतक) का कोई, किसी तरह का भी दबाव नहीं पड़ना चाहिये। और, मैंने सोचा कि अगर मैं इस मसले पर बोलूंगा, तो उससे भी सदस्यों पर एक दूसरी तरह से, सीधा नहीं तो, एक दूसरे ढंग से कुछ दबाव पड़ सकता है। मैं वह नहीं चाहता था। यह मैं साफ तौर से बता चुका था। लेकिन फिर भी हुआ यह कि पिछले सेशन में लोगों ने मुझ पर काफी जोर दिया था मैं भी इस बहस में हिस्सा लूं। मैंने तब उसका वायदा कर दिया था। मैं आज उसी वायदे को पूरा कर रहा हूं?

मैंने इस बहस में हिस्सा लेने के लिये थोड़ी कुछ तैयारी भी की है। कल शाम मैंने श्री फ्रैंक एन्थनी की वह स्पीच पढ़ी थी, जो उन्होंने इस संकल्प को रखते वक्त दी थी। मैंने कुछ और भी स्पीचें देख ली हैं। उसके बाद, मैंने संविधान सभा के पुराने रिकार्ड भी देखे, उस वक्त के, जब वहां भाषा के इस मसले पर बहस हुई थी। दूसरे लोगों की स्पीचों के साथ, मैंने उस वक्त की अपनी स्पीच भी पढ़ी, जो आज से ठीक दस साल पहले सितम्बर १९४८ में दी गई थी। आपकी इजाजत हो, तो मैं कहूं कि मुझे खुद अपनी स्पीच पढ़कर काफी ताज्जुब हुआ कि आज से दस साल पहले इस मसले पर मैंने कितनी अच्छी स्पीच दी थी। उसमें मैंने जो कुछ कहा था, आज भी उसके अलावा मुझे बहुत कुछ नहीं कहना है, और न मैंने उसकी कोई भी बात अब बदलकर कहने की जरूरत महसूस करता हूं।

---

†मूल अंग्रेजी में

इस सवाल के बारे में मेरे अपने जो ख्यालात हैं, वे सभी लोगों को मालूम हैं। मैं उनको कई बार दोहरा चुका हूं। इसके बारे में मेरा जो जरिया है वह न तो उन हिन्दी-प्रेमियों से मिलता जुलता है जो सिर्फ हिन्दी को ही बढ़ावा देने की बातें करते हैं, और न वह अंग्रेजी-प्रेमियों के नजरिये से ही मिलता-जुलता है। मैं हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं का प्रेमी हूं। दोनों ही को बढ़ावा देने के हक में हूं। मैं जब हिन्दी की बात करता हूं तो उसका मतलब होता है भारत की सभी भाषायें। अगर भारत की सभी भाषायें अपने-अपने क्षेत्रों में, अपनी-अपनी सीमाओं में ही फले-फूलें, तो उनमें आपस में कोई टक्कर हो नहीं हो सकती। हां, यह जरूर हो सकता है कि उनमें से कुछ भाषायें कुछ दूसरी भाषाओं की सीमाओं में भी आती हों। भाषाओं के मामले में ऐसा होता है। लेकिन उसमें कोई नुकसान नहीं। वे एक-दूसरे पर अच्छा असर डालती हैं। लेकिन हमें बचना तो उन लोगों से चाहिये जो भाषाओं की आपसी टक्कर की बातें करते हैं, जो कहते हैं कि एक भाषा के आगे बढ़ने का मतलब है किसी दूसरी भाषा का गला घुटना। मैं यह मानता हूं कि पहले जमाने में बिना शक अंग्रेजी को हुकूमत करने वालों ने ही हमारे ऊपर लादा था। इसलिये, अंग्रेजी ने जहां एक तरफ हमारे लिये ज्ञान की खिड़कियां खोल दी हैं, वहीं दूसरी ओर वह हमारे देश की सभी भाषाओं पर और हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं पर बुरी तरह हावी भी रही है, और यह बात हमारे दिल में चुभती है। यह बिलकुल सही है। हम इस मामले पर जरा अलग हटकर, थोड़ा ऊपर उठकर, सोचने की कोशिश भी करते हैं, फिर भी, कुछ हद तक हम उस चुभन को भुला भी नहीं पाते।

इस बहस के दौरान में भाषा के मसले के कई पहलुओं का जिक्र किया गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि श्री फ्रैंक एन्थनी का संकल्प इस मसले के सिर्फ एक ही पहलू का जिक्र करता है, सभी का नहीं। यह सही है कि यह मसला कुछ ऐसा बन गया है जैसे कि बर्रों का छत्ता होता है। आपने छत्ते को छुआ नहीं कि बर्रें आपको गुस्से से काटने को निकल पड़ती हैं। इसी तरह इस मसले के बारे में मुंह खोलते ही, लोगों के दिमागों में तरह-तरह के शकों शुबहे, तरह तरह के डर पैदा होने लगते हैं। और उसका नतीजा होता है कि इस मामले पर ठंडे दिमाग से तर्क पूर्ण ढंग से विचार हो नहीं हो पाता। इसलिये, औरों के मुकाबले कहीं छोटे इस मसले पर इन सभी बातों का ख्याल किये बिना कुछ सोचा ही नहीं जा सकता। और कोई चारा ही नहीं है। फिर भी आइये, हम सिर्फ इस मसले पर ही, इसके कुछ पहलुओं पर ही विचार करें।

श्री नाथपाई अभी-अभी बोल रहे थे। उन्होंने बहुत बड़े बढ़िया अल्फाज में अपील की है कि ऐंग्लो-इंडियन (आंग्ल भारतीय) लोगों की उनका अपना रूप बनाये रखने में मदद की जाये। मैं इससे बिलकुल सहमत हूं। मैं मानता हूं। लेकिन मेरी समझ में एक बात नहीं आती कि किसी एक खास तरह के संशोधन को पास कर देने, या न करने से उस में क्या और कैसे मदद मिलेगी, या अड़चन होगी। ऐंग्लो-इंडियन लोगों का रूप बनाये रखने के नजरिये से तो यह एक बहुत ही छोटा सा, बहुत कम अहम मसला है। वे तो कुछ दूसरी ही ताकतें हैं जो उन लोगों का रूप बनाये रखने में मदद दे सकती हैं या आड़े आ सकती हैं, क्योंकि भारत को एक करने के पीछे सभी तरह की ताकतें, तरह-तरह की ताकतें काम करती रही हैं, जो सभी भारतीयों को एक-दूसरे में घुलाती-मिलाती जा रही हैं। और मुझे उम्मीद है कि,—मैं सिर्फ ऐंग्लो-इंडियनों की बात नहीं कर रहा—सभी भारतीयों को एक-दूसरे में घुलाने-मिलाने, एक दूसरे के करीब ले जाने वाली वे ताकतें बढ़ती ही जायेंगी। मुझे यह भी उम्मीद है कि हम आज की तरह एक दूसरे से बिलकुल अलग-अलग समूहों में बंटे, जातियों और इसी तरह के अलग-अलग खानों में बंटे नहीं रह जायेंगे। ये दूरियां मिट

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

जायेंगी । और, अगर वैसा होगा तो जाहिर है कि सब के साथ ऐंग्लो-इंडियन लोगों पर भी उसका असर पड़ेगा । किसी दबाव से नहीं, बल्कि जातियों के घुलमिल कर एक होते चलने की स्वाभाविक प्रक्रिया से ही वह होगा । मेरा ख्याल है कि वह हमारे लिये अच्छा ही होगा ।

इस खास संकल्प का उस पर कोई असर नहीं पड़ेगा, क्योंकि मैं मानता हूं कि ऐंग्लो-इंडियन लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी है और मानी जानी चाहिये । इस अनुसूची में अंग्रेजी को शामिल कर देने से तो स्थिति बदल नहीं जायेगी । वह तो है ही । और, सभा को मालूम ही है कि हमारी नीति यही है कि लोगों को उनकी मातृभाषा में भी शिक्षा दी जाये । हम इसी को बढ़ावा देते हैं । हम उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश के लोगों को उनकी अपनी आदिम जातियों की भाषाओं में ही शिक्षा देते हैं । हालांकि उन में से कुछ भाषायें ऐसी हैं जिनका अभी विकास नहीं हुआ है, जिनमें बहुत सी खामियां हैं, फिर भी हम उनकी प्राथमिक शिक्षा का काम उनकी ही भाषाओं में शुरू करना अच्छा समझते हैं । अगर आप उनके बच्चों को किसी दूसरी भाषा में, आसामी, या हिन्दी, या किसी और भाषा में शिक्षित करना शुरू करें, तो उनको कठिनाई होती है । एक तरह से वे बच्चे उसे विदेशी भाषा समझते हैं । इसलिये इन दूसरी भाषाओं को कुछ बाद में, आगे चलकर ही पढ़ाया जाता है । और, जब आप आदिम जातियों तक को उनकी अपनी मातृभाषाओं में ही पढ़ाते हैं, तो फिर दूसरी ज्यादा आगे बढ़ी हुई भाषाओं पर तो वह और भी ज्यादा लागू होता है । अंग्रेजी तो फिर और भी महत्वपूर्ण भाषा है । जो लोग अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा समझते हैं---अंग्रेजी को मातृभाषा पसन्द करना, लोगों की अपनी पसन्द पर है---तो उन लोगों को उसकी शिक्षा की सभी सहूलियतें दी जानी चाहिये ।

श्री एन्थनी ने अपनी स्पीच में ऐंग्लो-इंडियन नाम से पुकारे जाने वाले स्कूलों का भी जिक्र किया था । चूंकि मुझे उनके बारे में ज्यादा कुछ जानकारी नहीं है, इसलिये मैं उनके बारे में ज्यादा कुछ नहीं कहूंगा । फिर भी, मैं इतना जरूर कहूंगा कि ऐंग्लो-इंडियन शिक्षा के लिये जो भी सहूलियतें दी जाती हैं, उन्हें जारी रखना चाहिये और उनके लिये अधिक आसानी पैदा की जानी चाहिये ।

यहां, हमें यह भी याद रखना चाहिये कि संविधान की आठवीं अनुसूची में १४ भाषाओं की जो सूची दी गई है, उसमें सभी भारतीय भाषाओं की सूची नहीं है । कई ऐसी भाषायें हैं, जिनका उसमें जिक्र नहीं है । इस संकल्प के जो संशोधन रखे गये हैं उस में कई और भी भाषाओं को जोड़ने की बात कही गई है । इसलिये आपको यह नहीं समझ बैठना चाहिये कि अगर उस अनुसूची में किसी भाषा का नाम नहीं दिया गया है तो वह भारतीय भाषा ही नहीं है, या हमारे देश में उसका इस्तेमाल ही नहीं किया जाता । ऐसा सोचना ग़लत है ।

इसी तरह, एक फ्रेंच भाषा भी है, जिसका हमारे मुल्क में ज्यादा इस्तेमाल नहीं होता । फिर भी, पांडिचेरी और कुछ दूसरी जगहों पर काफी तादाद में भारतीय लोग उसका इस्तेमाल करते हैं । हम ने उन लोगों से वायदा कर दिया है कि पांडिचेरी में फ्रेंच भाषा को इज्जत की जगह दी जायेगी; उसे बढ़ावा दिया जायेगा । हम वहां उसे बढ़ावा दे भी रहे हैं । आज पांडिचेरी राज्य की भाषा फ्रेंच ही है । वहां शिक्षा, कानून और डाक्टरी, वगैरह का काम फ्रेंच भाषा में ही होता है । आगे चलकर, काफी अर्से बाद, उसकी यह अहमियत बनी रहेगी या नहीं, इसके बारे में कुछ नहीं जानता । हो सकता है कि बहुत थोड़े अर्से के बाद ही पोर्चगीज भाषा बोलने वाले बहुत से लोग भी हमारे देश में मिल जायें । अभी भी गोआ से बाहर के ऐसे बहुत से लोग हमारे मुल्क में हैं । और इस में शक की कोई गुंजाइश ही नहीं कि गोआ हमारे मुल्क में मिलेगा ही । हम ने

उनको अभी से आश्वासन दे रखा है कि गोआ की पोर्चूगीज भाषा की इज्जत की जायेगी, और जहां तक उन लोगों का ताल्लुक है उसे भारत की भाषा माना जायेगा ।

इसलिये मेरा नजरिया कुछ दूसरा है । मैं यहां उन सभी दूसरी भाषाओं का जिक्र नहीं कर रहा हूं जो सभी जगह बिल्कुल भारतीय भाषायें ही हैं । सिंधी भाषा भी एक बड़ी महत्वपूर्ण भाषा है । सिंध तो अब हमारे देश में नहीं रहा है, लेकिन काफी ज्यादा तादाद में सिंधी बोलने वाले लोग हमारे मुल्क में हैं । और इसीलिये साहित्य अकादमी में हम ने जानबूझ कर अपनी सूची में अंग्रेजी और सिंधी भाषाओं को शामिल किया है, क्योंकि किताबों के प्रकाशन के मामले में हम उन सभी भाषाओं को बढ़ावा देना चाहते हैं जो हमारे मुल्क के लिये अहमियत रखती हैं । इसलिये हम ने आठवीं अनुसूची में शामिल की गई भाषाओं को तो लिया ही है, साथ ही अंग्रेजी और सिंधी भाषाओं को भी उस सुची में रखा है । इससे यही पता चलता है कि हम ने अंग्रेजी के प्रति एक दोस्ताना रुख अपनाया है और हम उसे बढ़ावा देना चाहते हैं । इसका यह मतलब भी नहीं कि हम दूसरी १४ भाषाओं की कीमत पर, उन को गिरा कर, अंग्रेजी को बढ़ावा देना चाहते हैं । इसका सिर्फ यही मतलब है कि हम महसूस करते हैं कि अंग्रेजी की अपनी अहमियत है । वह अहमियत इसलिये नहीं है कि ऐंग्लो-इंडियन लोग अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा मानते हैं, बल्कि उसके और भी बड़ी और गहरी वजूहात हैं । सब से बड़ी वजह यह है कि अंग्रेजी हमारे लिये दुनियां के सभी ख्यालातों, सभी तरह की कार्यवाहियों को देखने-समझने की एक खिड़की की तरह बन चुकी है । इसीलिये हम ने उसे शामिल किया है । हमारी साहित्य अकादमी का सब से बड़ा काम यही है कि एक भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषाओं में, अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में, भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद कराये । और बहुत से अनुवाद निकल भी चुके हैं ।

इसीलिये, इस सिलसिले में मेरी सब से पहली दलील यही है कि आठवीं अनुसूची में सभी भारतीय भाषाओं का जिक्र नहीं है । उस में ज्यादा फैली हुई, बहुत ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं का ही जिक्र है । कई ऐसी भी भाषायें हैं, जो बिल्कुल भारतीय हैं, पर जिनको उस सूची में नहीं दिया गया है । दूसरी चीज़ यह कि जहां तक शिक्षा का ताल्लुक है, हम लोगों की अपनी-अपनी मातृभाषाओ पर ही जोर देते हैं, उन चौदह भाषाओं पर नहीं । जहां-जहां अंग्रेजी, फ्रेंच, या पोर्चूगीज भाषाओं को, इतना ही नहीं आदिम जातियों की भाषाओं को भी, लोग अपनी मातृभाषा मानते हैं । वहां हम जरूर ही उन भाषाओं पर ही जोर देते हैं । इसलिये ऐंग्लो-इंडियन लोगों, या दूसरे लोगों को भी, जो अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा मानते हैं, इससे कोई परेशानी नहीं होनी चाहिये ।

अब संविधान के अनुच्छेद ३४७ को देखिये । उसमें कहा गया है :

> "तद्विषयक मांग की जाने पर यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि किसी राज्य के जन समुदाय का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाये तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को उस राज्य में सर्वत्र अथवा उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिये जैसा कि वह उल्लिखित करे राजकीय अभिज्ञा दी जाये ।"

इसमें कहा गया है "कोई भाषा", सिर्फ आठवीं अनुसूची में दी गई भाषा ही नहीं । किसी भी भाषा को बोलने वाले लोगों को, अगर उनकी संख्या काफी है, यह हक दिया गया है कि वे राष्ट्रपति से अनुरोध कर सकते हैं कि उस इलाके के लिये उनकी भाषा को सरकारी तौर पर मान्यता दी जाये । उस में यह कैद नहीं है कि वह भाषा अनुसूची में बताई गई १४ भाषाओं में से

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

ही कोई हो । अब यह दूसरी बात है कि किसी दूसरी भाषा को सरकारी तौर पर वहां मान्यता देने के हालात मौजूद हैं भी या नहीं, लेकिन संविधान में तो बड़े साफ़ तौर से दिया गया है कि वह १४ भाषाओं के अलावा भी कोई भाषा हो सकती है । और जहां तक अंग्रेजी का ताल्लुक है, उसका तो संविधान में कई जगहों पर सीधा-सीधा जिक्र किया गया है ।]

जैसा श्री एन्थनी ने खुद भी कहा है, भाषा का यह एक ऐसा सवाल है कि उसकी बात करते ही हमारे ऊपर भावुकता हावी हो जाती है और हम साफ-साफ नहीं देख पाते । और, इस मामले पर इस तरह की बहस होने की वजह भी यही है; नहीं तो मैं समझता हूं कि अनुसूची में कोई भाषा जोड़ने या उससे हटाने के बारे में ऐसी गरमागरम बहस की गुंजाइश थी ही नहीं, खास तौर पर तब जब कि उस अनुसूची में सभी भाषाओं का जिक्र भी नहीं है ।

यह सही है कि अंग्रेजी की वजह से भारतीय भाषाओं को कई तरह का नुकसान हुआ है, लेकिन साथ ही यह भी सही है कि उन को अंग्रेजी के जरिये सारी दुनिया के नजदीक पहुंचने का मौका भी मिला है । वैसे नुकसान भी उनको काफी पहुंचा है ।

किसी माननीय सदस्य, पता नहीं किसने, यह विचार रखा था

†**उपाध्यक्ष महोदय** : पंडित ब्रज नारायण "ब्रजेश" ने ।

†**श्री जवाहरलाल नेहरू** : उन्हों ने यह विचार रखा था कि अंग्रेजी जानने वाला व्यक्ति, अंग्रेजी न जानने वाले व्यक्ति से कहीं बड़ा होता है । हां, इस से भी काफी नुकसान पहुंचा है और एक हद तक अभी भी पहुंच रहा है । वैसे यह चीज अब धीरे धीरे गिरती जा रही है, फिर भी ऐसी भावना अभी भी है; और यह बुरी भावना है ।

[मुझे अंग्रेजी से कुछ ज्यादा लगाव है । मैं अंग्रेजी को महत्वपूर्ण समझता हूं । लेकिन उन वजूहात में नहीं जो यहां गिनाई गई हैं, क्योंकि वे तो बहुत ही गैर-महत्वपूर्ण हैं । मेरी ऐसी समझ की वजूहात बिल्कुल ही दूसरी है । लेकिन मैं यह भी समझता हूं कि हमारे मुल्क में ऐसी भावना का बना रहना एक बड़ी ही खराब बात है कि जो भी आदमी अंग्रेजी नहीं जानता वह अंग्रेजी जानने वाले से कुछ छोटा होता है, चाहे दूसरे आदमी की अंग्रेजी की जानकारी कितनी ही अधकचरी क्यों न हो । अंग्रेजी न जानने वाला आदमी अपनी भाषा का पंडित भी तो हो सकता है ।

इसलिये यह भावना कोई अच्छी चीज नहीं है । मैं तो समझता हूं कि हर आदमी के लिये यह निहायत ही जरूरी है कि वह अपनी संस्कृति की इज्जत करे, चाहे उस की अपनी संस्कृति आदिम लोगों की ही क्यों न हो । आप अगर आदिम जातियों को देखें, तो उन में भी आपस में जमीन-आसमान का फर्क है । कुछ तो काफी आगे बढ़ी हुई है और कुछ काफी पिछड़ी हुई हैं । मैं तो महसूस करता हूं कि उन में सब से पहले जरूरत इसी बात की है कि वे अपने आप की इज्जत करना सीखें । उन्हें कभी भी अपने आप को या अपनी जनता के लोगों को नफरत से देखना नहीं सिखाना चाहिये । यही बात हम सभी लोगों पर इतनी ही लागू होती है । हमारे मुल्क में यह भावना रही है; अंग्रेजी जानने वालों और अंग्रेजी बोलने वालों और मुल्क के अवाम, हमारी साधारण जनता के बीच एक खाई रही है, एक ऐसा अलगाव रहा है । अंग्रेजी बोलने और समझने वाले लोग अपने आपको साधारण लोगों से अलग, कुछ ऊंचा समझते रहे हैं । चाहे वे तामिल बोलने वाले हों, या मराठी या हिन्दी और बंगला

†मूल अंग्रेजी में

बोलने वाले । अब यह चीज खत्म होती जा रही है । लेकिन यह भावना रही जरूर है, और इस को जरूरी तौर पर खत्म करना ही है । हिन्दी या तामिल भाषा का कोई भी विद्वान उस आदमी से कहीं अच्छा है जो अधकचरी अंग्रेजी जानता हो । उसे कम से कम एक भाषा तो अच्छी तरह से आती है ।

अब इस का एक दूसरा पहलू लीजिये । आप उसे पसंद करें या न करें, मैं तो करता हूं । हमारे देश में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें ही बनती जा रही हैं, प्रादेशिक या राज्यीय भाषायें बनती जा रही हैं । इस में तो कोई शक ही नहीं । पहले अंग्रेजी की असली अहमियत इसी बात में थी कि वह शिक्षा का माध्यम थी । हम में से कई ने अंग्रेजी के माध्यम से ही शिक्षा पाई है । हमारे लिये तो इस दायरे से निकलना मुश्किल है, लेकिन अगली पीढ़ी तो उसके दायरे से निकल ही रही है । और अगली पीढ़ी के बाद की पीढ़ियां उस से बिल्कुल आजाद होंगी । बुनियादी तबदीली इसी बात में है, अनुसूची वगैरह की नहीं । धीरे धीरे शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें ही होती जा रही हैं; —हिन्दी या तामिल या तेलगू या मराठी, या गुजराती, या बंगला भाषायें ही अंग्रेजी की जगह ले रही हैं । मैं चाहता हूं कि ऐसा धीरे धीरे स्वाभाविक गति से ही हो, इन्हें जबरन् न थोपा जाये, जरूरत से ज्यादा जल्दबाजी न की जाये ।

डा० सुब्बारायन ने विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिये एक ही भाषा करने की बात कही है । मैं भी इसे पसंद करता हूं । पर मैं यह पसंद नहीं करता कि उसे संसद् या कानून के जरिये थोपा जाये । मैं चाहता हूं कि चीजें अपनी स्वाभाविक गति से ही आगे बढ़ें और अपने साथ पहले के और आज के जमाने की सभी अच्छी चीजें लेती चलें । भाषा के मामले में दबाव की नीति मुझे नापसंद है, किसी भाषा को जबरन थोपना मुझे नापसन्द है । इसीलिये मुझे हिन्दी-प्रेमियों की हिन्दी थोपने की कोशिश पसन्द नहीं है । इसी तरह, मुझे अंग्रेजी का थोपा जाना भी बुरा लगता है । मैं तो समझता हूं कि इन चीजों को स्वाभाविक गति से ही बढ़ने दिया जाये, हां उसे जब-तब थोड़ी मदद जरूर मिलती रहे ।

हमारे मुल्क में इस सिलसिले में सब से बड़ी तबदीली यह हुई है कि स्कूलों और हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम राज्य की भाषायें ही बन रही ह, बल्कि बन चुकी हैं । अंग्रेजी का भी इस्तेमाल होता है, जरूर होता और यह अच्छा भी है, खास तौर पर विश्वविद्यालयों में । पिछले जमाने की भाषा की विरासत के नजरिये से देखने पर, सब से बड़ी और नई तबदीली यही है कि अब प्रादेशिक भाषायें ही शिक्षा का माध्यम बन गई हैं । शिक्षा का माध्यम बदलना ही असली तबदीली है, यही अहमियत रखती है । अब किस भाषा को किस अनुसूची में रखा गया है, या नहीं रखा गया है, या उन के बारे में भाषा आयोग ने क्या कहा है, इस बात की इतनी अहमियत नहीं है । इस तबदीली के मुकाबले, इन चीजों की अहमियत बहुत कम है । इसलिये आप अंग्रेजी को दूसरे दर्जे की अहमियत रखने वाली भाषा ही मान सकते हैं, दूसरे दर्जे की अहमियत रखने वाली एक अनिवार्य भाषा ही मान सकते हैं । आप उसे एक बहुत ही महत्वपूर्ण भाषा मान सकते हैं, एक ऐसी भाषा मान सकते हैं जो शिक्षा का माध्यम तो नहीं है लेकिन जिसे अगल से एक विदेशी भाषा की तरह सीखा जाता है । अब इस नतीजे से बचा नहीं सकता मैं समझता हूं कि यही ठीक भी है ।

भाषा के इस मामले में भाषाओं के इस तरह के विकास में, उन के इस तरह आगे बढ़ने में, कुछ खतरे भी हैं । कुछ भाषायें, दूसरे भाषाओं से अलगाव पैदा कर सकती हैं । लेकिन हमें इन खतरों का सामना करना ही पड़ेगा । हम उनसे आंखें नहीं मूंद सकते । हमें अलगाव के रुझान से लड़ना पड़ेगा, उसे रोकना पड़ेगा, लेकिन साथ ही प्रादेशिक भाषाओं के विकास में बाधा डाल कर हम उस रुझान से नहीं लड़ सकते । वह तो गलत होगा । प्रादेशिक भाषाओं को तो ज्यादा से ज्यादा आगे बढ़ने का मौका दिया जाना चाहिये, उसे बढ़ावा दिया जाना चाहिये;

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

क्योंकि वे तरक्की कर के ही एक दूसरे के ज्यादा नजदीक आ सकती हैं। कम से कम मैं तो यही समझता हूं। एक भाषा दूसरी को हटा कर, खुद उस की जगह लेने की कोशिश करे, यह तो गलत होगा। उसी तरह बेकार होगा जैसा कि उत्तर प्रदेश, पहले के संयुक्त प्रान्त में, एक दो पीढ़ियों तक यह बेकार की बहस चली थी कि वहां उर्दू रहे या हिन्दी। कुछ थोड़े से छोटे मोटे फर्कों के अलावा, वे दोनों भाषायें एक ही मानी जा सकती हैं। फिर भी, दोनों के बीच एक लम्बी बहस उठ खड़ी हुई थी, दोनों की ओर से एक दूसरी पर काफी कीचड़ उछाला गया था, और बुराई की गई थी दोनों एक दूसरी को हटाना चाहती थीं। यह एक बड़ी अजीब सी बात है लेकिन फिर भी अब तक ऐसी बहसें चलती हैं। कुछ हिन्दी-प्रेमी उर्दू के नाम से ही चिढ़ जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि उर्दू की बुराई करके वे खुद अपने ही हाथ-पैर कटवाते हैं, क्योंकि हिन्दी और उर्दू दोनों ही भाषाये एक दूसरी की मदद करती हैं। वे दोनों भाषायें एक दूसरे के खिलाफ नहीं हैं। एक दूसरी की तरक्की के आड़े नहीं आतीं; वे एक दूसरी को आगे बढ़ाने में मदद करती हैं। उन में से एक की तरक्की रोकने का मतलब है दूसरी की भी तरक्की रोकना।

इसीलिये, मैं सोचता हूं कि भाषाओं में अलगाव पैदा होने की प्रवृत्ति का हमें सामना करना ही पड़ेगा। उस से बचा नहीं जा सकता। मुझे पूरी उम्मीद है कि हम इस खतरे पर पार पा लेंगे लेकिन तभी जब कि हम सही ढंग की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दें और दूसरों पर अपना मंशा लादने की कोशिश न करें।

अब हिन्दी को लीजिये। दक्षिण के बहुत से लोग हिन्दी के सम्बन्ध में एतराज करते हैं। लेकिन उन का एतराज इसलिये नहीं है कि वे हिन्दी के खिलाफ हैं बल्कि इसलिये है कि वे यह समझते हैं कि हिन्दी उन पर लादी जा रही है। दरअसल मैं समझता हूं कि दक्षिण के बहुत से लोग हिन्दी सीख रहे हैं और अच्छी तरह सीख रहे हैं। उस का सिलसिला चल रहा है परन्तु जैसे ही उस के लादे जाने की बात आती है तो वे नाराज हो जाते हैं और यह ठीक भी है। और इसलिये जबरदस्ती की बात खत्म होनी चाहिये। बल्कि मैं तो उन से यह भी कहूंगा कि यदि वे हिन्दी नहीं सीखना चाहते तो वे न सीखें। हमें यह तरीका अख्तियार करना चाहिये और इस तरीके से वे आपके अधिक नजदीक आ सकेंगे।

और भी बहुत सी चीजें हैं। मैं भाषा के पूरे सवाल की चर्चा नहीं कर रहा हूं परन्तु मैं फिर यह कहता हूं कि भारत में एक बहुत बड़ी बात यह हुई है कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी के बजाय प्रादेशिक भाषायें बन गई हैं। दूसरी चीजें इतनी अहमियत नहीं रखतीं। शिक्षा के माध्यम का बदलना सही और जरूरी भी था। क्योंकि तभी उस का जनता में प्रसार किया जा सकता था। दूसरा कोई तरीका ऐसा करने का नहीं है। मुझे अंग्रेजी से कुछ अधिक लगाव जरूर है। और मैं उस के बारे में अभी कुछ कहूंगा भी परन्तु मुझे अपने देश के लोगों से भी उतना ही लगाव है। यह ठीक है कि दूसरे देशों की जानकारी के लिये अंग्रेजी जरूरी है परन्तु हम यह नहीं भूल सकते कि हमें ४० करोड़ लोगों को अपने साथ रखना है जिस का एक ही तरीका हो सकता है कि उन्हीं की भाषाओं का प्रयोग किया जाये।

इन्हीं सब कारणों से मैं समझता हूं कि श्री एन्थनी का संकल्प कोई अकलमन्दी का काम नहीं है। मैं नहीं समझता कि उस से कोई फर्क पड़ेगा। उस से एंग्लो-इंडियन लोगों का कोई भला नहीं होगा। हां, यह जरूर हो सकता है कि उस से एक नया झगड़ा खड़ा हो जाय, नये खतरे खड़े हो जायें। मैं ऐसी हालत नहीं होने देना चाहता। मैं चाहता हूं कि ऐसी बात प्राकृतिक ढंग से हो वैधानिक संशोधन द्वारा नहीं। मान लीजिये संविधान सभा उस समय अंग्रेजी को रख देती तो वह बनी रहती। परन्तु अब अपने रास्ते से हट कर वैसा करना ठीक नहीं होगा। क्योंकि उस से जो झगड़ा पैदा होगा वह कभी खत्म नहीं हो सकेगा। अन्त में वह अंग्रजी के लिये हानिकर होगा क्योंकि हमें यह नहीं भूलना चाहिये

कि आखिरकार भारत के भाग्य का फैसला अंग्रेजी न जानने वाले लोगों द्वारा ही किया जायेगा क्योंकि देश में उन्हीं का बहुमत है। इसलिये हम उस से कैसे बच सकते हैं? हम उन की विचारधारा को बदल सकते हैं परन्तु यदि उन्हें यह महसूस हो गया कि आप उन के विरुद्ध हैं तो आप अपनी बाजी हार जायेंगे और आप तथा आप की अंग्रेजी खत्म हो जायेगी। इसलिये मैं समझता हूं कि ऐसी बातों को उठाना अक्लबन्दी नहीं है।

मेरा ख्याल है कि हम अपनी भाषाओं को बढ़ावा देना चाहिये। जनता के साथ मेल बनाये रखन के लिये हमारी शिक्षा और हमारा कार्य हमारी ही भाषाओं में होना चाहिये। तभी वह यह जान सकेगी कि आपकी सरकार क्या कर रही हैं। मैं अंग्रेजी में इसलिए बोल रहा हूं कि मुझे वैसी आदत पड़ी हुई है। परन्तु मैं जानता हूं कि सही बात यही है कि मैं उस भाषा में बोलूं जिसे अधिक लोग समझ सकें। मैं समझता हूं कि हमें वैसा करना चाहिये।

डा० सुब्बारायन् ने राजभाषा का जिक्र किया। हमारे संविधान में अनेक कारणों से, जिनकी मैं चर्चा करना जरूरी नहीं समझता, यह विनिहित किया गया है कि हिन्दी का विकास होना चाहिये, इस कारण से नहीं कि हिन्दी अन्य भाषाओं से अधिक शक्तिशाली है बल्कि कुछ व्यावहारिक कारणों से मैं समझता हूं कि यह किया जाना चाहिये।

मैं दो बातें और जरूरी समझता हूं। एक बात तो यह है कि जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिये और दूसरे अभी हमें बहुत समय तक, जिस की मैं कोई अवधि नहीं बता सकता, अंग्रेजी को एक सहायक अतिरिक्त भाषा के तौर पर बनाये रखना चाहिये। जिस का कारण यह नहीं है कि उस में कुछ सुविधायें ह बल्कि यह है कि मैं यह नहीं चाहता कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोग यह महसूस करें कि उन के लिये तरक्की के दरवाजे बन्द किये जा रहे हैं क्योंकि उन से हिन्दी का प्रयोग करने के लिये कहा जा रहा है। इसलिये मैं अंग्रेजी को वैकल्पिक भाषा के रूप में उस समय तक बनाये रखना चाहता हूं जब तक लोग उस की आवश्यकता समझें और उस का निर्णय हिन्दी जानने वाले नहीं वरन् हिन्दी न जानने वाले लोग करें।

मैं अपनी बात दुहरा देना चाहता हूं। हिन्दी का क्रमिक विकास हो, इस के लिये मैं प्रयत्नशील हूं परन्तू म चाहता हूं कि जब तक लोग जरूरी समझें अंग्रेजी भी कायम रहे। कुछ राज्यों ने ऐसा किया है, वे उस का प्रयोग जा ी रख सकते हैं और धीरे धीरे अन्य भाषाओं को भी विकसित होने दे सकते हैं, जो आगे जा कर अंग्रेजी की जगह ले सके।

इतना कहने के बाद मैं कुछ शब्द अंग्रेजी के बारे में भी कहना चाहूंगा। दरअस्ल हिन्दी और अंग्रेजी के मुकाबले का सवाल बहुत छोटा है, यह असली सवाल है ही नहीं। जहां तक अंग्रेजी की अहमियत का सवाल है उस का कारण मिल्टन अथवा शैक्सपियर नहीं है क्योंकि बड़े बड़े कवि तो एशियाई भाषाओं में भी हुए हैं और फ्रांसीसी, जर्मन, रूसी, स्पेनिश आदि में भी हुए हैं बल्कि बात यह है कि वह हमें आज की दुनिया के नजदीक लाती है, आधुनिक दुनिया को देखने के लिये खिड़की खोलती है। यदि हम उस खिड़की को बन्द कर दें तो हमारा भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा।

हम पंचवर्षीय योजना, औद्योगीकरण, विज्ञान और प्रोद्योगिकी (टेक्नोलोजी) की बात करते हैं। विदेशी भाषाओं के बिना उन के दरवाजे हमारे लिये बन्द रहेंगे। आप के लिये अंग्रेजी रखना जरूरी नहीं है, आप फ्रांसीसी, जर्मन अथवा रूसी कोई भी भाषा रख सकते हैं। परन्तु जाहिर है कि जो भाषा हम जानते हैं उस में काम करना जर्मन, रूसी अथवा स्पेनिश की अपेक्षा कहीं अधिक आसान है।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

यह बहुत बड़ा काम है। बेशक हम रूसी, जर्मन, रुपेनिश, आदि भाषायें सीखना चाहते हैं क्योंकि वे व्यापार, वाणिज्य तथा विज्ञान में काम आती हैं। आज हर समर्थ वैज्ञानिक को दो तीन अभारतीय भाषायें जाननी होती हैं।

लोग समझते हैं कि हिन्दी या बंगाली या मराठी या तामिल में कुछ वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शब्द गढ़कर और कुछ पाठ्य पुस्तकों का अनुवाद कर के हम विज्ञान की पढ़ाई के लिये आवश्यक पृष्ठ-भूमि तैयार कर सकते हैं। हाई स्कूलों के लिए आप ऐसा करते हैं और वह ठीक भी हो सकता है यद्यपि मैं समझता हूं कि हमने इस शब्द गढ़ने के काम को बेवकूफी की सीमा तक पहुंचा दिया है क्योंकि हमने एक सरल भाषा को बहुत ज्यादा बनावटी और न समझे जाने काबिल बना दिया है। यह भयंकर गलती है और मैं समझता हूं कि इस के जिम्मेदार हिन्दी के कुछ प्रमुख उत्साही हैं। उन्हों ने उसे बहुत कठिन बना दिया है। साहित्यिक सौन्दर्य के प्रश्न को छोड़ दीजिये मैं तो भाषा को सरल रखने का हिमायती हूं। मुझे ये बड़े-बड़े और कठिन शब्द देख कर बहुत दुख होता है। उन्हें देख कर मेरी भाषा सम्बन्धी धारणा को ठेस पहुंचती है। मैं नहीं जानता कि जिस व्यक्ति ने उन्हें गढ़ा है वह भी उन्हें समझता है या नहीं। यह बड़ी भयंकर चीज है और हिन्दी के लिये अन्य सब चीजों से अधिक खतरनाक है क्योंकि आप हिन्दी को इस्पात के बन्धनों से जकड़े दे रहे हैं। जो उस का विकास नहीं होने देंगे। इन चीजों के लाद देने से भाषा की रचनात्मकता खत्म हो जाती है। भाषा उस नाजुक फूल की तरह से है जो सुन्दरता में बढ़ता है। आप उसे अनेक तरह से खुराक दे सकते हैं, परन्तु खींचतान करने से वह नहीं बढ़ सकता। यह बहुत बुरी चीज है।

इस समय हमारी पंचवर्षीय योजना, औद्योगीकरण, यंत्रीकरण, वैज्ञानिक प्रगति और गवेषणा की जो स्थिति है उस को देखते हुए समस्त भारतीय भाषाओं के सम्मिलित प्रयत्न से भी हम उन्नति नहीं कर सकेंगे। मैं यह बात दावे के साथ कह रहा हूं कि यदि आप विदेशी भाषाओं को छोड़ कर केवल देश की भाषाओं से चिपके रहना चाहते हैं तो आप आगे नहीं बढ़ सकेंगे। हाई स्कूलों में आप भले ही विज्ञान की शिक्षा दे लें और विश्वविद्यालयों की प्रारम्भिक पढ़ाई के लिये भी कुछ पुस्तकें प्राप्त कर लें। यह सब तो हो सकता है लेकिन विज्ञान का अर्थ बी० ए० अथवा बी० एस० सी० का पाठ्यक्रम नहीं है। आज का विज्ञान जेट-युग अणुशक्ति, अन्तरिक्ष यात्रा आदि तक पहुंच गया है। यह एक नया युग है और यदि सभा मुझे इस आलोचना के लिये क्षमा करें तो मैं यहां तक कह सकता हूं कि यह सभा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व नहीं करती। अर्थात् यहां पर साहित्यकारों, वकीलों और किसानों का ही अधिक प्रतिनिधित्व है।

मैं ने हाल में एक प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में कुछ महीने पहले दिया गया व्याख्यान पढ़ा था जिस का शीर्षक "दो संस्कृतियां" था। वह भारत की नहीं वरन्, इंगलैंड की स्थिति की चर्चा कर रहे थे। उन्हों ने यह बताया था कि इंगलैंड में किस प्रकार दोनों संस्कृतियों का विकास हुआ तथा दोनों एक दूसरे से किस प्रकार बिल्कुल अलग हैं तथा जो एक दूसरे को समझती नहीं हैं। ये दो संस्कृतियां हैं—साहित्यिक संस्कृति और वैज्ञानिक संस्कृति। उन्हों ने इस के उदाहरण भी दिये। यह बात उन्हों ने कैम्ब्रिज के कालेज के हाल में कही थी जिस में बड़े बड़े दिग्गज—वैज्ञानिक, गणितज्ञ और साहित्यकार उपस्थित थे। उन लोगों ने एक दूसरे की ओर घूरकर देखा लेकिन चुप रह गये। उन्हों ने कहा कि यह बड़ी असाधारण बात है कि साहित्यकार आधुनिक वैज्ञानिक युग के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता और वैज्ञानिक साहित्य-कोष से अपरिचित है। जब इंगलैंड जैसे देश में यह स्थिति है तो भारत की क्या बात? हम विज्ञान में बहुत पीछे हैं। हमारी विचारधारा तक वैज्ञानिक नहीं है। हम विज्ञान के कुछ आविष्कारों का प्रयोग अवश्य करते हैं और वैज्ञानिक कथायें भी पढ़ते हैं। परन्तु वास्तव में हम अपनी विचारधारा में इस आणविक युग से बहुत पीछे हैं यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जब इंगलैंड के साहित्यकार, जो अत्याधिक औद्योगीकृत देश में रहते हैं अपने को उस के अनुकूल नहीं ढाल सके तो हमारे लिये तो वैसा करना और भी अधिक कठिन है।

हमारे कुछ प्रोफेसर विज्ञान पढ़ाते हैं; कुछ प्रौद्योगिकीविद् (टेक्नोलोजिस्ट) भी हैं निस्सन्देह वे उन्नति कर रहे हैं और मैं कहूंगा कि भारत में औद्योगिक क्रान्ति सन्निकट है। परन्तु अभी वह औद्योगिक क्रांति नहीं की जा सकती क्योंकि हमारे यहां कोई साहित्य नहीं, कोई भाषा नहीं है। हमारे यहां प्रारम्भिक भौतिक शास्त्र, प्राणिविज्ञान अथवा रसायन शास्त्र की कुछ पुस्तकें अवश्य हैं परन्तु उच्च अंकगणित जैसे विषयों पर इस समय हमारी भाषा में कोई भी पुस्तकें नहीं हैं। औद्योगिक क्रान्ति तब तक नहीं की जा सकती जब तक हमें ये पुस्तकें न प्राप्त हों। आप कुछ पुस्तकों का अनुवाद कर सकते हैं। यह ठीक है। परन्तु विदेशी भाषाओं की जानकारी के बिना नये युग के द्वार आप के लिये बन्द रहेंगे और मेरा विचार है कि अंग्रेजी उन में सब से सरल है।

एक और पहलू भी है। आज के औद्योगिक और वैज्ञानिक युग में एक नई भाषा का विकास हो रहा है जिसे औसत व्यक्ति नही समझ सकता। परन्तु प्रविधिज्ञों (टैक्नीकल व्यक्तियों) के बीच उस का विकास बड़ी शीघ्रता से हो रहा है और वह मुख्यत: गणित के फार्मूलों पर आधारित है। उस का विकास शीघ्रता से इसलिये हो रहा है कि उसे विज्ञान की उन्नति से कदम मिला कर चलना है। मैं आशा करता हूं कि सारे संसार में यही भाषा व्याप्त हो जायेगी। इसलिये यदि हम कोई और भाषा रखेंगे तो दुनिया से अलग हो जायेंगे।

आज हम वैज्ञानिक प्रगति—संचार साधनों आदि—के कारण एक दुनिया की बात करते हैं। राष्ट्रीय सीमाओं का कोई महत्व नही रह गया है। मुझे इस में तनिक भी शक नहीं है कि यदि दुनिया काफी समय तक बनी रही तो सारी दुनिया एक हो जायेगी। परन्तु ये राष्ट्रीय भावनायें रास्ते में आती हैं और हम उन की उपेक्षा नहीं कर सकते। हमें एक दुनिया की दिशा में बढ़ना चाहिये। अपने को अलग नहीं करना चाहिये। इस संबंध में यह भी आवश्यक है कि आप अन्तर्राष्ट्रीय अंकों का प्रयोग अधिकाधिक करें जिस का फैसला हम पहले कर चुके हैं। यह इसलिये आवश्यक है कि वैज्ञानिक फार्मूले देवनागरी अंकों में नहीं लिखे जा सकते।

अन्त में मैं यही कहना चाहता हूं कि यह बात बहुत अहमियत रखती है कि लोगों का विकास उन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुसार हो। यदि हम किन्हीं लोगों पर, चाहे वे आदिम लोग ही क्यों न हों, कोई नई चीज लादने की कोशिश करेंगे तो उस से बहुत नुकसान होगा। हम कोई आदिम लोग नहीं; हमारी संस्कृति दस हजार वर्ष पुरानी है। फिर हम पर कोई नई चीज कैसे लादी जा सकती है। यह असंभव है। भाषा ऐतिहासिक तारतम्य का प्रतीक बन जाती है। आखिरकार भाषायें क्या हैं? उत्तर की भाषायें संस्कृत से निकटतया संबद्ध हैं। दक्षिणी भाषायें उस प्रकार से संबद्ध नहीं हैं वरन्, अन्य तरीकों से हैं।

प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि संस्कृत भूतकाल में हमारी महान् संस्कृति की प्रतीक और साधन रही है। जब कभी मैं संस्कृत के सम्बन्ध में विचार करता हूं तो उसकी प्रगति से अभिभूत हो जाता हूं। अब हम उसे छोड़ नहीं सकते हैं। हमें उसे सीखना चाहिये। परन्तु हमारी भाषायें संस्कृत की सांस्कृतिक परम्परा हैं। यदि हम उन पर जोर न दें तो इसका मतलब यह होगा कि हम अपने को अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अलग कर लेते हैं। हमारी जनता अशिक्षित भले ही हो पर असंस्कृत नहीं है। यदि यह तारतम्य टूट जाता है तो हमारे जैसे प्राचीन देश के लिये यह अत्यन्त घातक होगा। हम वैसा नहीं कर सकते। इसलिए हमें अपनी भाषा का विकास करना है, जनता से सम्पर्क बनाये रखना है और उन भाषाओं में काम शुरू करना है। लेकिन मैं फिर उसी दूसरी बात पर आता हूं—आधुनिक वैज्ञानिक जेट आणविक युग की बात पर। आधुनिक विज्ञान और प्रगति के द्वार अपने लिये खुले रखने के लिये हमें एक विदेशी भाषा अवश्य रखनी चाहिये।